IMPACT FACTOR 5.397 (SJIF USA)
BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 3, Issue 4, October-December, 2025
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
ISSN : 3048-6971 (ONLINE)

जाति, जेंडर और वर्ग: 'एक थी कोटेवाली' के स्त्री पात्रों का अंतर्संबंधात्मक अध्ययन

दुर्गानिन्द ठाकुर
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

क्या किसी स्त्री पात्र की गरिमा उतनी ही है जितना कि किसी स्त्री की गरिमा वास्तविक जीवन में है? क्या किसी कृति को उसके स्त्री पात्रों की नज़र से देखा जा सकता है? वे स्त्री पात्र स्वयं को किस रूप में परिभाषित करती हैं?

दलित स्त्री रचनाकार अनिता भारती का कहानी संग्रह 'एक थी कोटेवाली तथा अन्य कहानियां' ऐसे अनेक प्रश्नों को आमंत्रित करता है। सघन स्त्री पीड़ा से गुजरती इन कहानियों की स्त्रियां आरोपित परिभाषाओं से पृथक अपना मार्ग निर्मित करती हैं। छवि या सांचे में कैद करने की वर्चस्वशाली नैतिकता को पलटते हुए ये स्त्रियां समाज को, वर्गीय–जातीय संबंधों को, नैतिकता के पौरूषेय प्रतिमान को विवेचित करती हैं।

इतिहास और समाज को समझने के क्रम में यह विराट प्रश्न हमारे सामने है कि 'विषय वस्तु' कौन है और उसका विश्लेषक कौन है? वे कौन हैं जो समाज को निरंतर परिभाषित कर रहे? वे कौन हैं जो सामाजिक मूल्यों को गढ़ रहे हैं? ठीक इसी प्रकार, स्त्री को कौन परिभाषित करता आ रहा है?

व्याख्याकार और व्याख्यायित के बीच की असमानता और पृथकता प्रत्येक व्याख्या को अपूर्ण बनाती है। इसलिए यहां प्रश्न किया जा सकता है कि व्याख्यायित द्वारा व्याख्याकार की विवेचना क्या होगी? दूसरे शब्दों में, समाज स्त्री को परिभाषित करता आया है किंतु यह जानना आवश्यक है कि स्त्री की नज़र में उस समाज की व्याख्या क्या है? क्या आलोचनाएं हैं, क्या विश्लेषण है?

बगैर इन प्रश्नों से संवाद किए कहानी का लोकतंत्र भी अधूरा है बल्कि कहानी का लोकतंत्र खड़ा ही इन प्रश्नों के बल पर होता है। सामाजिक स्वतंत्रता का एक पहलू स्वयं को परिभाषित कर सकने की अपार संभावना भी है।

यहां रेखांकित करना आवश्यक है कि किसी दलित स्त्री का लेखन अबतक व्याख्यायित संसार के किसी पात्र का स्वयं बोल पड़ना है। अपने हिस्से का सत्य लिए खड़े ये पात्र युगों के सामाजिक युद्ध को अपनी देह पर झेलते हुए संघर्षरत अविजित लोग हैं। युद्ध की भीषणता इन पात्रों के जीवन में जगह–जगह दिख जाती है और यह भी कि युद्ध –विराम हुआ नहीं है। वर्ण व्यवस्था जनित यह सामाजिक वर्जना का संग्राम निरंतर जारी है।

अनीता अपनी कहानियों में इन्हीं सामाजिक संघर्षों के अलग–अलग प्रसंगों और दृश्यों को दर्ज करती हैं। उनका कथा कौशल का श्रेष्ठ वहां लक्षित किया जा सकता है, जहां उनके पात्र जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के लिए सामाजिक संरचना से जूझते हैं। वो भारतीय समाज के निर्मम यथार्थ को कहानी के शिल्प में कहते हुए उसका कायांतर भी करती हैं। इसलिए इनकी कहानियों में जीवन का संघनतम रूप घटित हो सका है।

दलित स्त्री लेखन में समाज के वर्जित क्षेत्र के पात्र अपने हिस्से का सत्य लिए महाआख्यानों के समक्ष खड़े हैं। इसे इस तरह भी कहा जा सकता है कि यदि गंगा, यमुना, सरस्वती, कावेरी, सतलज जैसी अनेक नदियों के देश में किसी को प्यास बुझाने के लिए पानी नहीं मिल सका तो वे महाआख्यान कितने झूठे हैं जो नदियों पर सामाजिक वर्चस्व नहीं बतलाते! ऐसे समाज की आंखों में कितना कम पानी है जहां कोई प्यास से मर जाए?

"वैशाली और गंगी देख रही थी, आजादी के पचास साल बीतने पर भी गांव की दशा में कोई खास परिवर्तन नहीं आया है। वही बड़े–बड़े पक्के आलीशान घरों के सामने छोटे–छोटे अधबने धूल–धूसरित घर, वही ऊंची जाति के खेतों में काम करते दलित, वही गंदा पानी पीने को मजबूर लोग। क्या यहां कभी परिवर्तन नहीं आएगा? गंगी को जोखू की याद आ गई।"[1]

इस कहानी में विभाजक रेखा 'पानी' है। क्या समाज को इस तरह भी देखा जा सकता है कि किनके पास पीने का साफ पानी है और किनके पास नहीं? क्या पेय जल की गुणवत्ता सामाजिक अवस्थिति व शोषण को उद्घाटित नहीं करती?

अनीता ने इस कहानी में बहुत बारीकी से पानी के जरिए समाज में विद्यमान सामाजिक भेदभाव, लैंगिक असमानता व रक्तपायी वर्ग का प्राकृतिक संसाधनों पर एकाधिकार को उभारा है।

"मैं आपसे यह पूछती हूं क्या हमारा जन्म ऐसे ही घुट –घुटकर मरने के लिए हुआ है?"[2]

गंगी का यह प्रश्न दलित समाज की अंतर्वेदना को झकझोर देता है। यह प्रश्न केवल गंगी का नहीं बल्कि समाज की सभी स्त्रियों का है। कहानी के ठीक इसी बिंदु पर गंगी की व्यक्तिगत आकांक्षा सामाजिक मुक्ति की आकांक्षा में बदल रही होती है। इस पात्र की विशिष्टता सभी कठिनाइयों से पार पाते हुए व्यक्तिगत जीवन में सफल हो जाने में नहीं है। निज से बाहर निकल कर वापस जनता के बीच जाना और उसे एकत्रित करना गंगी की सच्ची विशिष्टता है।

गंदे पेय जल के कारण उसने अपने पति जोखू को खोया था। अपने जीवन के अंतिम पड़ाव पर गांव के दलित समाज के लिए स्वच्छ पानी सुनिश्चित करवा कर वह वर्षों के असहनीय दुःख से उबरती है।

जातिगत हिंसा के दो स्वरूप हैं– शारीरिक और मानसिक। शारीरिक हिंसा से पीड़ित उबर भी जाए लेकिन मानसिक हिंसा जीवनपर्यंत उसके व्यक्तित्व को खंडित करती रहती है। मानसिक हिंसा जाति व्यवस्था का कहीं ज्यादा तेज हथियार है। घृणा, ईर्ष्या, द्वेष का संचार बिजली की तरह पूरे समाज में प्रवाहमान है। सामाजिक संसर्ग के अवसरों पर करंट के झटके लगते रहते हैं!

गंगी जब अपने नाते–रिश्तेदारों को जातिगत हिंसा से जूझते हुए देखती है तो उसे अपनी पीड़ाएं शरीर पर रेंगती हुई महसूस होती है। गंगी को मानसिक आघात की खाई से निकालने में उसकी नवासी वैशाली की अहम भूमिका है। वैशाली दलितों की पढ़ी–लिखी तीसरी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती है। यहां वैशाली का ज्ञान, अधिकारबोध और गंगी की सामाजिक मुक्ति की तीव्र इच्छा से शोषणमुक्त माज का रास्ता निर्मित होता नजर आता है!

भारतीय समाज में प्रतिदिन सामाजिक मुक्ति का संघर्ष जारी है। एक लड़ाई में संघर्ष आगे बढ़ता है, दूसरी लड़ाई में संघर्ष को दबा दिया जाता है। कहने का तात्पर्य है कि दलित मुक्ति कोई एकबार लड़ कर सामाजिक मुक्ति अर्जित कर लेने वाले लड़ाई नहीं है। समानता के लिए हर छोटी–बड़ी लड़ाई अपने आप में एक महाभारत है। जिसे दलित समाज लगभग निहत्थे लड़ रहा।

यहां संग्रह की 'एक लड़ाई की मौत' कुछ प्रश्न पूछती है, 'लक्खी' कौन थी, उसके हत्यारे कौन हैं? एक मजदूर महिला के जीवन में कानून, पुलिस, प्रशासन क्या बदलाव लाते हैं? क्या संविधान इन्हें सुरक्षा प्रदान करता है? क्या जनता द्वारा चुने गए जनप्रतिनिधियों को सदन की ऊंची कुर्सी पर बैठने के पश्चात मजदूरों का जीवन दिखता है?

अपने पहले प्रश्न पर आते हैं, लक्खी कौन थी? उसके हत्यारे कौन हैं?

संग्रह की 'एक लड़ाई की मौत' कहानी की पात्र तो है किंतु यहां उत्तर कहानी से बाहर जीवन में तलाशना होगा। क्या 'लक्खी' उन हजारों–लाखों मजदूर महिलाओं में से एक नहीं है, जिनका जीवन समाज में अदृश्य बना दिया गया है। जिनके जीवन से जुड़े सवाल कभी राजनीतिक और सामाजिक पटल पर दृश्यमान नहीं हो पाते हैं।

हाशिए के वर्गों के प्रति लोकतंत्र की यह भीषण उपेक्षा संभवतः इसलिए भी है क्योंकि यह पूरा तंत्र कथित उच्च वर्ण और वर्ग के कब्जे में है। वर्ण व्यवस्था से उत्पन्न घृणा है जो अपने ही देश और समाज के सह नागरिकों के प्रति इतनी अमानुषिकता, असहिष्णुता करने की वैचारिक और नैतिक जमीन प्रदान करती है। जब कथित उच्च वर्ण निम्न जातियों पर हिंसा करता है तो अपनी सवर्ण हिंदू चेतना में वह अनैतिक नहीं होता। सवर्ण हिंदू चेतना की निर्मित केवल स्वयं को श्रेष्ठ मनाने से ही पूरी नहीं हो जाती बल्कि निरंतर किसी अन्य को निम्न बनाए रखने में उसकी पूर्णता है। यह हिंसा वर्ण व्यवस्था में दूसरों की मानवीय गरिमा छीनने की अनिवार्य शर्त है!

लक्खी वर्ण व्यवस्था और पितृसत्ता से संघर्षरत है। घोषित परिभाषाओं से परे स्त्री द्वारा अपने 'स्व' का निर्माण यथास्थिति को खंडित

करता है। सत्ता संरचना सामाजिक मुक्ति की ऐसी हर पहलकदमी को कुचल कर वर्चस्व बचाए रखना चाहती है।

लक्खी वर्ग, जाति, लिंग और धर्म की आग में जल रही होती है–

'अभी लक्खी को घर पहुंचे आधा घंटा भी न हुआ था कि वो चारों पुलिस वाले उसके घर पहुंच गए। सिपाही दीपक के हाथ में मिट्टी के तेल का डिब्बा था चारों ने घर के अंदर दरवाजा बंद कर लिया और उसे थानेदार से शिकायत करने के लिए खूब मारा–पीटा फिर उसपर मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगा दी।'[3]

यहां यह प्रश्न किया जा सकता है कि देश की राजधानी में किसी स्त्री को जिंदा जला दिया जाता है और कोई हाहाकार नहीं मचता? ऐसे ही प्रश्न को संबोधित संग्रह की कहानी 'सीधा प्रसारण' का उल्लेख यहां समीचीन होगा।

निसंदेह मीडिया समाज का आंख और कान है। समाज मीडिया के माध्यम से खुद को सुन–समझ पाता है। मीडिया की तत्परता के जितने तर्क हैं, उतने ही तर्क मीडिया द्वारा उपेक्षा के भी दिए जा सकते हैं। प्रायः सभी दलित रचनाकारों ने मीडिया की सामाजिक भूमिका पर प्रश्न चिह्न लगाए हैं। वास्तव में मीडिया का दायित्व हर वर्चस्व का भंजन है। किंतु जब मीडिया शक्ति संरचना के संरक्षण में उतर जाता है तो जनसामान्य को अपार क्षति पहुंचती है।

कहानी में प्रियंका और सुनीता दो छोर पर स्थित है। प्रियंका धनाढ्य परिवार की शहरी लड़की है। वहीं सुनीता गरीब दलित ग्रामीण परिवार से है। दोनों पात्र स्त्री होने के अलावा केवल मृत्यु को साझा करते हैं। प्रियंका संस्थागत हत्या की शिकार है। सुनीता को गांव के दबंगों ने बलात्कार करने के बाद जिंदा जला कर मार डाला था। प्रियंका को मीडिया की सहानुभूति मिल पाती है। मीडिया की सक्रियता के कारण इस प्रकरण में न्याय सुनिश्चित हो पाता है। लेकिन सुनीता केस मीडिया की भीषण उपेक्षा का शिकार हो जाता है। जिसके कारण न्याय मिलना तो दूर पुलिसिया दमन से बचने के लिए पीड़ित परिवार को उपाय करने पड़ते हैं।

वे कौन से आधार हैं जो मीडिया की प्राथमिकता तय करते हैं? स्मरण रहे, कोई व्यक्ति या संस्था किन प्रश्नों से संवेदित होता है और किन प्रश्नों से नहीं इसमें उसकी सामाजिक अवस्थिति की बड़ी भूमिका होती है। 'सीधा प्रसारण' से यहां पर्याप्त रोशनी मिलती है:

मीडिया उपेक्षित वर्गों के प्रति अपने दायित्व के निर्वहन में भूलवश नहीं चूकता बल्कि जातिगत वर्चस्व को बचाए रखने के लिए जातीय हिंसा की खबरें दबा दी जाती हैं।

लक्खी के जीवन में बाहरी संघर्ष को आसानी से देखा जा सकता है लेकिन परिवार के बीच जो उसका संघर्ष है, वह हर स्त्री का संकट है। लक्खी के प्रारंभिक जीवन के बारे में वाचक ने बताया कि कैसे एक संबंध के कारण उसे घर में हिंसा झेलनी पड़ी। अंततः उसे घर छोड़ना पड़ा। लक्खी का घर छोड़ना पुरुषों की तरह ज्ञान के लिए, समाज के लिए गृह त्याग जितना गौरवपूर्ण हो सकता था क्या? क्या मीरा पर घर त्यागने के बाद लांछन नहीं लगाए गए?

पितृसत्ता की सबसे बड़ी हिंसा है, किसी मनुष्य से निर्णय के सभी अधिकार छीन कर उसे पशुवत बना देना। परिवार और समाज में स्त्री को अपने निर्णय लेने की कितनी स्वतंत्रता है?

अनीता की कहानियों में अनेक ऐसे स्थल आते हैं जहां स्त्री अपने परिवार और समाज के भीतर फंसी हुई प्रतीत होती है। सामान्य जीवन की आकांक्षा भी उनके गले की फांस हो जाती है। भारतीय परिवार तमाम विविधताओं के बावजूद पितृसत्ता की सामान्य भूमि पर खड़े पाए जाते हैं। इससे समाज का कोई वर्ग अछूता नहीं है। 'तीसरी कसम' और 'सुजाता रुक मत जाना' अपनी परिणति में बहुत करीब हैं। 'रमैनी' समाज के द्वारा पराजित जीवन जी रही होती है, 'सुजाता' जीवन के लिए समाज से लड़ कर अपना रास्ता निर्मित कर पाती है। 'रमैनी' का पात्र एक गहरा विलाप है। अकल्पनीय जघन्यता से सामान्य बालिका वेश्या बनाई जाती है। पिता के अथक प्रयासों के बाद उसे विद्यालय में दाखिला मिला था। विद्यालय जहां हर बच्चे के उज्जवल भविष्य की नींव रखी जाती है। विद्यालय में शिक्षकों की प्रताड़ना का रमैनी के बाल मन पर घातक दुष्प्रभाव पड़ता है। परिणामस्वरूप उसे पढ़ाई से ही अरुचि हो जाती है। दलितों के लिए विद्यालय जातीय हिंसा के केंद्र हैं। क्रूरता देखिए, जातिवादी मानसिकता किसे अपना शिकार बनाती है? उन अबोध बच्चों को जिन्हें

सबसे अधिक स्नेह, प्रोत्साहन और स्वीकृति की आवश्यकता होती है।

रमैनी को अंततः हार कर नाचने–गाने के जातिगत पेशे को ही अपनाना पड़ता है। निम्न जाति पर इतनी सख्त निगरानी रखी जाती है कि सामान्यतः लोग अपने जातिगत पेशे से निकलना भी चाहें तो उन्हें वापिस उसी अंधे कुंए में धकेल दिया जाता है। रमैनी की मां कलाकर कहलाने को जीवनपर्यंत तरसती रही, अपने पेशे से निकलने की छटपटाहट लिए जीती रहीं।

लंबे शोषण के उपरांत उत्पीड़ित शोषक अनुकूलित आचरण को अपना लेता है। जड़ता इतनी गहरी होती है कि हर परिवर्तन की आहट उसे संकट के रूप में नजर आती है। मसलन रमैनी की बड़ी बहन सोना को "उसका पति सूरज यह कहकर छोड़ गया कि यह गाना–बजाना नहीं करेगी तो मेरे किस काम की।"[4]

स्त्री के लिए सामाजिक संरचना में जितने अवरोध और अन्याय विनयस्त हैं, उतने ही परिवार के भीतर भी!

रमैनी की तीसरी कसम है कि वह अपनी बिटिया 'मीनू' को जातिगत पेश से आजाद कराएगी :

"उसने मन में कसम खाई कि वह अपने बच्चों को पढ़ा कर रहेगी चाहे जो भी बाधा आए। वह मीनू का हाथ खींचते हुए बोली, 'चल दिखा मुझे, कौन है वो टीचर जो तुझे पीछे बैठाएगी, गोबर गणेश कहेगी उसे अब मैं देखूंगी।' रमैनी मीनू का हाथ पकड़े स्कूल की तरफ जा रही थी अपनी तीसरी कसम पूरी करने।"[5]

'सुजाता' का पात्र रमैनी का स्वप्न है। जीवन की विसंगतियां मनुष्य को किस तरह जोड़ती है। 'सुजाता रुक मत जाना' की मुख्य पात्र सुजाता एक बिंदु पर 'मीनू' का विकास प्रतीत होती है।

जाति संस्था अपनी मूल संरचना में ही स्त्री विरोधी है। किसी भी जाति में स्त्री को नियंत्रित कर पुरुष वर्चस्व के अधीन रखने की कही–अनकही प्राथमिकता है। सुजाता के प्रसंग में दलित समाज की पितृसत्तात्मक सड़ांध सामने आती है :

"तभी पंचायत ने आपस में फुसफुसाहट करके आपस में कुछ फैसला किया और सरपंच ने खंखारते हुए कहा, 'क्यों रे मंगू, अब इस मामले में तेरा क्या कहना है? क्या तू अपनी छोरी सुजाता को कलेक्टर बनाकर मर्द बनाएगा? देख भैया हमारे यहां तो ऐसा नहीं चलता और अगर तुझे अपनी लड़की को कलेक्टर बनाना है तो तुझे एक हजार रुपए मांगे को हर्जाने के रूप में देना पड़ेगा और बिरादरी को मीट–शराब की दावत देना पड़ेगी।"[6]

यह पंचायत बुलाई क्यों गई थी? इसलिए कि सुजाता 12वीं में है और आगे पढ़ना चाहती है। मांगे के बेटे से शादी नहीं करना चाहती। एक अयोग्य लड़के से शादी के लिए इनकार करना अपराध है? पढ़ कर जीवन बदलने का स्वप्न देखना कसूर है? ऐसी स्थिति में समाज के उत्थान की कौन–सी कल्पना साकार हो सकती है भला? 'सुजाता' के ही शब्दों में :

"सरपंच बाबा, आपने मेरे मां–बाप से जो जुर्माना भरने को कहा है उससे मैं बिल्कुल सहमत नहीं हूं। आप लोग कब तक उन्नीसवीं सदी में रहोगे? दुनिया अंतरिक्ष तक के रास्ते खोज चुकी है, कभी आपने सोचा है कि आखिर विधाता का कौन सा ऐसा कानून है जिसमें लिखा हो केवल हमारी बिरादरी ही गली–मुहल्ले बुहारे, लोगों की गन्दगी साफ करे, जूठा–सूठा खाए। आपकी पीढ़ी को यह अच्छा लगता होगा पर हमारी पीढ़ी अब यह सब नहीं करेगी।"[7]

स्त्री के शोषण का स्वरूप सीधा–सपाट नहीं है बल्कि शोषण की कई परतें हैं। भीतरी और बाहरी दमन के कई संस्तर हैं। यहां यह प्रश्न किया जा सकता है कि सुजाता जैसी स्त्रियां शिक्षा के माध्यम से सामाजिक मुक्ति अर्जित कर लेती हैं?

अगर शिक्षा और नौकरी से आर्थिक प्रश्न हल हो जाएं तो सामाजिक जटिलताएं सामने आकर घेर लेती हैं। आप 'मिस गीता' को किस श्रेणी में रखेंगे? दृढ़ व्यक्तित्व की धनी, समृद्ध परिवार से है, उच्च शिक्षित है मगर फिर भी उसे अपने कार्यस्थल पर अपनी जाति बतानी ही पड़ती है। बल्कि कथित निम्न जाति से होने की सफाई देनी पड़ती है।

संग्रह की 'एक थी कोटे वाली' कहानी में 'मिस गीता' शिक्षा जगत में शिक्षकों के जातिदंश का आख्यान हमारे समक्ष लाती हैं! इससे पूर्व की कहानियों में शिक्षा जगत में जाति की भीषणता को कहानीकार ने बच्चों के ज़रिए बयां किया है। इस कहानी से गुजरते हुए कई भ्रम

टूटते हैं, अगर आप शिक्षा जगत में हैं तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वहां ज्ञान से सभी समतावादी हो चुके हों! हमारी शिक्षा व्यवस्था समतावादी दृष्टि विकसित कर पाने में कितनी सफल है, इसे 'मिस गीता' के जीवन से भलीभांति समझा जा सकता है:

"वह बचपन से सुनती आई थी कि शिक्षक देश का भाग्य निर्माता होता है। पर यहां देखकर लग रहा है कि शिक्षक भी जाति निर्माता है। इन सबके कटाक्षों से उसका खून खौलने लगा वह जोर से चिल्ला कर बोली– ये क्या तुमने जाति–पाति की बातें लगा रखी हैं? क्या तुम शिक्षक कहलाने लायक हो? पूरा द्रोणाचार्य तुम्हारे मन में बैठा है।"[8]

इस कहानी का वह कमजोर क्षण है जब पात्र चलताऊ अस्मितावादी नारा उछाल देता है: "तुम सिर्फ तीन प्रतिशत हो पर सब पर राज कर रहे हो अब इस राज के जमाने लद गए।"[9]

अगर आप अतिप्रतिनिधित्व को, संसाधनों पर वर्ग विशेष के वर्चस्व को रेखांकित करना चाहते हैं तो इसके कई तरीके हो सकते हैं लेकिन इस शब्दावली में सहचर स्त्री के प्रति संवेदनहीनता ही प्रकट होगी। क्या कथित 'तीन प्रतिशत' की स्त्रियों को शोषण का शिकार नहीं होना पड़ता? क्या उसने अपनी देह पर सदियों सती प्रथा, वैधव्य और यौन हमले नहीं सहे हैं? अनाधिकारपूर्ण जीवन नहीं देखा है?

यह ठीक है कि कहानी यहां दमित ऐतिहासिक क्रोध को अभिव्यक्त करती है किंतु स्मरण रहे, शोषण इकहरी वस्तु नहीं है। लैंगिक शोषण की व्याप्ति समाज के प्रत्येक वर्ग में निष्ठुरता और निर्लज्जता से विद्यमान है। समतावादी वैचारिकी में सबके शोषण–दमन का प्रतिकार होगा तथा सबकी स्वीकृति होगी। वर्चस्व से संघर्ष करते हुए एक अन्य वर्चस्व की आवश्यकता नहीं होती! इसके पक्ष में इस संग्रह की ही 'नी हरामजादिए' कहानी रखी जा सकती है। सामान्य कामकाजी स्त्री की निर्मम जीवन प्रक्रिया को उधेरती हुई यह कहानी हमें उस यथार्थ से साक्षात्कार कराती है, जहां हम विपरीत परिस्थितियों के भारीपन से किसी मनुष्य के व्यक्तित्व का मिटना समझ सकते हैं। 'मिसेज महाजन' का चरित्र अपनी संभावना में बहुत विराट होते हुए भी संकीर्ण परिधि की विवशता में घुट रहा होता है। पात्र का अपनी नवविवाहिता सहकर्मी 'दीपा' से संवाद का प्रत्येक शब्द अंतस्थल को स्पर्श कर जाता है :

"फिर एक दिन दीपा को बुलाकर मैडम ने पूछा:

'नी दीपा, तेरा दूल्हा तुझे कैसे बुलाता है? क्या नाम रखा है उसने तेरा?'

'जी वो मुझे प्यार से दीपू कहते हैं' दीपा संकोच से बोली।

अब तो मैडम को गुस्सा आ गया। गुस्से से गुर्राती हुई बोलीं, 'मेरी तो जब से शादी हुई है तब से वो मुझे नी हरामजादिए कहकर बुलाता है। प्यार से बुलाना हो तब भी गुस्से से बुलाना हो तब भी। प्यार तो मुए ने कभी किता ही नई।'

दीपा गुस्से से बोली,'मैडम आपने कभी विरोध नहीं किया?'

'एकबार किया था। कहता है औरत को अगर गाली न देकर बुलाओ तो सिर पे चढ़ जाती है।"[10]

बाप–भाई द्वारा छली, पति और सास से ठगी अधूरी उत्पीड़ित स्त्री कठोरता और संवेदनहीनता की ओट न ले तो क्या करे? संवेदनशील होना उसकी पीड़ा में वृद्धि ही करेगा। स्वयं को समझने वाला हृदय वह कहां पाएगी?

इस कहानी में अनीता भारती फॉरमुलाबद्धता का अतिक्रमण करती हैं। कहानी की सफलता यह है कि संसार के किसी भी भूगोल की स्त्रियां इससे जुड़ाव महसूस करेंगी। यहां स्त्री जीवन का सार्वभौमिक सत्य ओझल नहीं होता।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'एक थी कोटेवाली तथा अन्य कहानियां' की स्त्रियां विविधस्वरूपा, सजग–सचेत व न्यायप्रिय हैं। इन स्त्रियों का संसार समाज की एक बेहतर कल्पना प्रस्तुत करता है। वह दिन कितना सुंदर होगा जब दुनिया की सभी स्त्रियां स्वतंत्र होंगी? दुनिया एक सुंदर सुदीर्घ कविता होगी! अनीता की कहानियों की स्त्रियां संसार को पुनर्परिभाषित करती हैं!

संदर्भ सूची –

1. भारती, अनिता, एक थी कोटेवाली तथा अन्य कहानियां– कहानी संग्रह, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– प्रथम, 2022, पृष्ठ संख्या– 103
2. वही, पृष्ठ संख्या– 108
3. भारती, अनिता, एक थी कोटेवाली तथा अन्य कहानियां– कहानी संग्रह, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– प्रथम, 2022, पृष्ठ संख्या– 27
4. भारती, अनिता, एक थी कोटेवाली तथा अन्य कहानियां– कहानी संग्रह, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– प्रथम, 2022, पृष्ठ संख्या– 32
5. वही, पृष्ठ – 35
6. भारती, अनिता, एक थी कोटेवाली तथा अन्य कहानियां– कहानी संग्रह, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– प्रथम, 2022, पृष्ठ संख्या– 47
7. वही, पृष्ठ संख्या– 48
8. भारती, अनिता, एक थी कोटेवाली तथा अन्य कहानियां– कहानी संग्रह, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– प्रथम, 2022, पृष्ठ संख्या– 42,43
9. वही, पृष्ठ संख्या– 43
10. भारती, अनिता, एक थी कोटेवाली तथा अन्य कहानियां– कहानी संग्रह, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– प्रथम, 2022, पृष्ठ संख्या– 90